सत्ता, धर्म और राजनीति पर व्यंग्य तथा जनता की त्रासदी का सशक्त दस्तावेज़ : बकरी

- डॉ. हसन युनुस पठान

सार :

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' आधुनिक हिंदी नाट्य-साहित्य में सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्य की श्रेष्ठ कृति है। सतह पर यह नाटक एक साधारण बकरी की कहानी है, किंतु प्रतीकात्मक स्तर पर यह भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण और पाखंड को उजागर करता है। बकरी यहाँ आम आदमी का प्रतीक है, निर्दोष, असहाय और सत्ता, धर्म तथा अवसरवादी राजनीति के बीच बार-बार बलि चढ़ने वाला। नाटककार ने तीखे व्यंग्य के माध्यम से राज्य-संस्थाओं की दमनकारी प्रवृत्ति, नेताओं के अवसरवाद और धर्मगुरुओं की पाखंडपूर्ण भूमिका की आलोचना की है। साथ ही उन्होंने जनता की चुप्पी और निष्क्रियता पर भी कटाक्ष किया है, क्योंकि अन्याय केवल शासकों के कारण नहीं, बल्कि शोषित वर्ग की नपुंसकता के कारण भी स्थायी बनता है। नाटक की सरल, संवादात्मक और व्यंग्यपूर्ण भाषा इसे एक साथ हास्यप्रद और विचारोत्तेजक बनाती है। यद्यपि यह नाटक 1970 के दशक की पृष्ठभूमि में लिखा गया था, किंतु इसकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। भ्रष्टाचार, धर्म और राजनीति का गठजोड़, आम जनता की विवशता जैसे प्रश्न आज भी उतने ही गंभीर हैं। इस प्रकार 'बकरी' केवल एक नाटक न होकर लोकतंत्र के लिए चेतावनी भी है कि यदि जनता जागरूक न हुई तो वह सदैव शोषण और अन्याय की बलि चढ़ती रहेगी।

बीज शब्द: त्रासदी, बकरी, हिंदी नाटक, राजनीति, व्यंग्य, प्रतीकात्मकता, लोकतंत्र, आम आदमी।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जन्म 15 सितम्बर 1927 को बस्ती राज्य उत्तर प्रदेश में हुआ। वे हिंदी साहित्य की 'नई कविता' धारा के प्रतिनिधि कवि थे। कविता, कहानी, आलोचना और पत्रकारिता इन सभी क्षेत्रों में उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया। उनकी कविताओं में मानवीय संवेदना, करुणा और विद्रोह का स्वर प्रमुख रूप से देखने को मिलता है। वे सत्ता की दमनकारी नीतियों के आलोचक थे और अन्याय, असमानता तथा शोषण के विरुद्ध लिखते रहे। पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने 'दिनमान' और 'पराग' जैसी पत्रिकाओं से जुड़कर जनसरोकारों को स्वर दिया। उनकी नाट्यकृति 'बकरी' (1979) ने उन्हें हिंदी रंगमंच पर भी स्थापित किया। यह नाटक व्यंग्य और प्रतीकात्मकता की दृष्टि से भारतीय नाट्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृति माना जाता है। आलोचक श्याम कुमार लिखते हैं कि "सर्वेश्वर का व्यंग्य हँसाता कम है, झकझोरता अधिक है।" (1992 : 76)।

हिंदी नाट्य परंपरा में व्यंग्य और रूपक के माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ को उद्घाटित करने का कार्य अपेक्षाकृत कम हुआ है। अधिकांश नाटकों में या तो ऐतिहासिक कथाओं का मंचन हुआ या फिर सामाजिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण। इस संदर्भ में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (1927–1983) का नाटक 'बकरी' अपनी विशिष्टता के कारण अलग पहचान रखता है। यह नाटक सत्ता-संरचना, राजनीति और धर्म के गठजोड़ तथा आम आदमी की विवशता पर करारा प्रहार करता है। 'बकरी' की कहानी सतह पर भले ही मामूली लगे, लेकिन इसकी परतें खोलने पर यह पूरे भारतीय लोकतंत्र का प्रतीक बन जाती है। साधारण सी बकरी नाटक के केंद्र में है, किंतु उसके बहाने नाटककार ने उस व्यवस्था को निशाना बनाया है जिसमें निर्दोष और कमजोर हमेशा पिसता है।

'बकरी' गरीब जनता का प्रतीक है। नाटक की कथावस्तु दो अंकों में विभाजित है और प्रत्येक अंक में तीन-तीन दृश्य शामिल हैं। हर दृश्य के बाद प्रस्तुत नट-गायन आसन्न परिस्थितियों का विश्लेषण करता है। गाँववासियों की दयनीय स्थिति और उनकी मजबूरी का राजनेता किस प्रकार शोषण कर रहे हैं–यह इस नाटक की केन्द्रीय अनुभूति है। विशेष बात यह है कि इस कथ्य को प्रस्तुत करने के लिए सर्वेश्वरजी ने किसी आरोपित कथानक, घटनाओं या पात्रों का सहारा नहीं लिया है। पूरे नाटक की बुनियाद केवल तीन डाकुओं, एक सिपाही और उनके द्वारा गाँव की एक गरीब स्त्री की बकरी छीन लेने की घटना पर आधारित है। इसी मामूली-सी घटना के उतार-चढ़ाव में सम्पूर्ण सामाजिक विडम्बना उजागर होती है। डाकुओं और सिपाही के संवाद, उनकी मुद्राएँ, उनकी गायन-शैली, अभिनय और परिस्थितियाँ यह सब बिना किसी बनावट के इस कड़वे सत्य को सामने रखती चलती हैं। डाकू वस्तुतः व्यवस्था और उसकी शोषणकारी योजनाओं के प्रतीक बन जाते हैं, जबकि गरीब स्त्री की बेबस पुकार उनके बीच पिसती हुई जनता का रूपक प्रस्तुत करती है। दूसरी ओर, चौपाल का दृश्य और ग्रामीणों की चिंता-व्यथा नाटकीय व्यंग्य और करुणा को समेटे हुए आगे बढ़ती है। देश की वर्तमान स्थिति को नट इन रूपकों के माध्यम से अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने नाटक 'बकरी' में बकरी को एक अत्यंत प्रभावी प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। बकरी का स्वभाव–सहनशीलता, कम मांग, बेजुबानी और आत्मनिर्भरता उसे निरीह जनता का सटीक रूपक बनाता है। बकरी से दूध लिया जाता है, पर उसकी देखभाल, सुरक्षा और आरोग्य की चिंता नहीं की जाती; यह स्थिति जनता के शोषण का प्रतिरूप है, जिससे शासन वोट, कर और श्रम तो लेता है, पर उसके विकास और कल्याण की उपेक्षा करता है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, "'बकरी' दरअसल भारतीय लोकतंत्र की वह तस्वीर है जिसमें जनता हमेशा शिकार बनती है और सत्ता हमेशा शिकारी।" बकरी अपनी पीड़ा व्यक्त नहीं कर पाती, उसी प्रकार जनता भी राजनीतिक और सामाजिक दबावों में अक्सर अपनी समस्याएँ व्यक्त नहीं कर पाती। यह प्रतीकात्मकता सत्ता की स्वार्थपरक नीति पर तीखा व्यंग्य है। जनता को

आर्थिक, शैक्षिक और स्वास्थ्यगत रूप से कमजोर रखना नेताओं की सुविधा है, क्योंकि असंगठित और अस्वस्थ जनता विरोध नहीं कर सकती। इस दृष्टि से बकरी का प्रतीक अत्यंत सार्थक है।

आलोचनात्मक रूप से, यह चित्रण जनता को एकदम निष्क्रिय और असहाय मान लेता है, जबकि इतिहास बताता है कि जनता में परिवर्तन की क्षमता भी होती है। फिर भी, नाटक का उद्देश्य जनता की वर्तमान शोषित स्थिति को उजागर करना है, और उस संदर्भ में बकरी का रूपक अत्यंत प्रभावशाली और यथार्थपरक बनकर उभरता है। नाटक यह उद्घाटित करता है कि राज्य और सत्ता-संस्थाएँ कमजोर के प्रति सहानुभूति नहीं रखतीं। पुलिस की भूमिका यहाँ रक्षक की न होकर दमनकारी तंत्र की है। वह युवक की सुरक्षा करने के बजाय उसे "कानून-व्यवस्था का संकट" मान लेती है।

सत्ता और शोषण का संबंध इतिहास की एक स्थायी सच्चाई है। जहाँ भी सत्ता केंद्रित हुई है, वहाँ शोषण अवश्य हुआ है। सत्ता यदि सेवा और न्याय का माध्यम बने तो समाज उन्नत होगा, पर यदि वह दमन और लालच का साधन बने तो समाज पतन की ओर जाएगा। भारतीय लोकतंत्र में भी सत्ता की यह दोहरी भूमिका स्पष्ट है, एक ओर जनता की सुरक्षा और विकास का दावा, दूसरी ओर शोषण और भ्रष्टाचार की वास्तविकता। जनता की आँख में धुल जोख कर अपना उल्लू सीधा करने के लिए दुर्जन सिपाही से कहता है, "नहीं दीवान जी, इतनी जल्दी नहीं करनी है। लोगों को मालूम होना चाहिए कि हम न्याय करते हैं। हम उनके हैं, उनके लिए है।" (2021: 25) साहित्यकारों ने बार-बार इस विडंबना को उजागर किया है। अंततः यही कहा जा सकता है कि सत्ता तभी सार्थक है जब वह शोषण के विरुद्ध खड़ी हो, अन्यथा वह स्वयं शोषण का पर्याय बन जाती है।

सत्ता और शोषण का संबंध मानव सभ्यता जितना ही पुराना है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि जहाँ कहीं सत्ता केंद्रित हुई है, वहाँ शोषण की संभावनाएँ भी उत्पन्न हुई हैं। सत्ता का मूल उद्देश्य समाज में व्यवस्था बनाए रखना और जनकल्याण सुनिश्चित करना होता है, किंतु जब यह कुछ व्यक्तियों, वर्गों या संस्थाओं के हाथों में केंद्रित हो जाती है, तो वह शोषण का साधन बन जाती है। बकरी नाटक में यही साधन बन जाने की पूरी प्रक्रिया का चित्रण लेखक ने किया है। सत्ता राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक अथवा आर्थिक किसी भी रूप में हो सकती है। राजनीतिक सत्ता शासन और प्रशासन पर नियंत्रण रखती है; सामाजिक सत्ता जाति, लिंग और वर्ग आधारित संबंधों को नियंत्रित करती है; धार्मिक सत्ता आस्था के नाम पर जनसमूह को दिशा देती है; और आर्थिक सत्ता संसाधनों पर कब्ज़ा करके अपने प्रभाव को बनाए रखती है। इन सभी रूपों में सत्ता के साथ शोषण का रिश्ता अक्सर जुड़ जाता है। शोषण केवल प्रत्यक्ष दमन या हिंसा नहीं होता, बल्कि वह कई बार अदृश्य और संस्थागत रूप भी धारण करता है। संस्थागत शोषण नाटक में सत्यवीर के माध्यम से इसे प्रकार देखा जा सकता है, "यहाँ किसके पास कुछ है ? तुम लोग बकरी स्मारक निधि बनाओ। तुमसे नहीं होता, हम बनाएँगे। उसमें

दान दो। जैसे भी हो, जितना भी हो। जो दान कष्ट उठाकर नहीं दिया जाता वह नहीं फलता।" (2021 : 28) इस पर कर्मवीर कहता है, "इस पर सब मिलकर राय करो। निधि में काफी पैसा होना चाहिए। तुम्हारे कल्याण के लिए 'बकरी शांति प्रतिष्ठान", 'बकरी संस्थान', 'बकरी सेवा संघ', 'बकरी मंडल' बहुत-सी संस्थाए बनानी हैं। तभी कुछ होगा।" (2021 : 28) कराधान की नीतियों, अवसरों में असमानता, श्रम के उचित प्रतिफल का अभाव, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर नियंत्रण–ये सब शोषण के ही आयाम हैं।

लोकतंत्र में सत्ता जनता की सेवा का माध्यम मानी जाती है, किंतु जब जनता सजग और सक्रिय नहीं रहती, तब वही सत्ता शोषण में बदल जाती है। यही कारण है कि लोकतंत्र को "जनता के लिए, जनता द्वारा और जनता का शासन" कहा गया है। जनता की निष्क्रियता सत्ता के निरंकुश हो जाने का सबसे बड़ा कारण है। हिंदी साहित्य ने बार-बार सत्ता और शोषण के रिश्ते को उजागर किया है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का नाटक "बकरी" इसका उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें बकरी आम आदमी का प्रतीक बनकर सत्ता, धर्म और प्रशासन के गठजोड़ के हाथों बार-बार बलि चढ़ती है। यहाँ सत्ता केवल शासन पर नियंत्रण नहीं रखती, बल्कि शोषण की वैधता भी गढ़ती है। सत्ता और शोषण का रिश्ता चेतावनी देता है कि किसी भी सत्ता को यदि जनता नियंत्रित न करे, तो वह जनसेवा के बजाय आत्मसेवा का साधन बन जाती है। और जो इस आत्मसेवा का विरोध करता है, उसके साथ, "सिपाही: नहीं साले तू भेड़िया है। कर्मवीर: और भेड़िया खुला नहीं छोड़ा जाता। दीवान जी, इसे तब तक जेल में सड़ाओ जब तक बकरी न बन जाए। हथियार बरामद कराओ साले के पास से।" (2021: 44) इसलिए लोकतांत्रिक समाज का पहला कर्तव्य है, सत्ता पर निगरानी रखना और यह सुनिश्चित करना कि सत्ता का प्रयोग शोषण के लिए नहीं, बल्कि समानता, न्याय और जनकल्याण के लिए हो।

भारतीय लोकतंत्र का दावा है कि यह जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा है। परंतु नाटक में यह दिखाया गया है कि जनता (बकरी) न केवल उपेक्षित है, बल्कि उसकी हत्या तक कर दी जाती है। नेता जनता को केवल चुनावी नारे और सत्ता प्राप्ति का साधन मानते हैं। आलोचकों ने इस नाटक को भारतीय राजनीति की विडंबनाओं का दर्पण माना है।

नाटक इस प्रतीक के माध्यम से गांधीवादी विचारधारा और आधुनिक राजनीतिक व्यवहार के बीच की तीव्र विसंगति को उजागर करता है। गांधीवाद के केंद्र में जनता सर्वोपरि मानी गई है। गांधीजी 'गाँव की ओर चलो', 'भारत गाँवों में बसता है' और 'स्वराज्य' जैसे सिद्धांतों के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि भारत के निर्माण और विकास की प्रक्रिया जनता और उसके कल्याण से ही आरंभ होनी चाहिए। उनके चिंतन में जनता केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि राष्ट्र का वास्तविक धुरी-बिंदु है। किन्तु आधुनिक राजनीति में गांधी के इन विचारों का बार-बार दुरुपयोग होता है। आज गांधीवादी आदर्शों की प्रशंसा केवल भाषणों और नारों में सीमित होकर रह गई है। नेता गांधीवादी सिद्धांतों का आवरण ओढ़कर जनता के

सामने स्वयं को उनके अनुयायी के रूप में प्रस्तुत करते हैं, लेकिन वास्तविकता में उनकी नीतियों और आचरण में गांधीवाद का अनुपालन कहीं दिखाई नहीं देता। कथनी और करनी की यह विसंगति नाटक के व्यंग्य का प्रमुख केंद्र है। नाटक में बकरी का संदर्भ गांधीजी से भी जुड़ता है। गांधीजी बकरी का दूध पीते थे और बकरी उनके अहिंसा-आधारित, सरल, ग्राम्य और सादगीपूर्ण जीवन का प्रतीक भी बन गई थी। परंतु नाटक में गांधी की बकरी मात्र एक प्रतीक नहीं, बल्कि गांधीवादी विचारों के गलत उपयोग और राजनीतिक दोहरेपन का आईना बन जाती है। नाटक यह दिखाता है कि जिस बकरी को गांधीजी ने सादगी, पोषण और नैतिकता का प्रतीक माना, आज वही बकरी नेताओं द्वारा अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए इस्तेमाल की जाती है–जैसे जनता का उपयोग चुनावी लाभ के लिए किया जाता है। गाँवों में आज भी गांधी का नाम लेकर जनता को प्रभावित किया जाता है। नेताओं की चुनावी रणनीतियों में गांधीवादी मूल्यों का जिक्र तो होता है, परंतु चुनाव जीतने के बाद वही जनता भुला दी जाती है। बकरी की तरह जनता को भी वादों की चारा दिखाकर बार-बार दुहा जाता है। यह विडंबना न केवल गांधीजी के विचारों का अपमान है, बल्कि जनता के साथ गहरे स्तर पर होने वाले शोषण को भी उजागर करती है। 'बकरी' के माध्यम से न केवल सत्ता, राजनीति और धार्मिक पाखंड का पर्दाफाश किया है, बल्कि यह भी दिखाया है कि गरीब जनता किस प्रकार बार-बार बलि की बकरी बनती है। नाटक आधुनिक लोकतंत्र की कमजोरियों, राजनीतिक अवसरवादिता और गांधीवादी आदर्शों के विडंबनापूर्ण उपयोग पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से 'बकरी' सिर्फ एक नाटक नहीं, बल्कि जनता की शोषणगाथा का गहन सामाजिक-राजनीतिक दस्तावेज़ है।

नाटक में पुलिस सुरक्षा की संस्था न होकर सत्ता का औज़ार है। सिपाही के माध्यम से लेखक ने पुलिस तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार और सत्ता के प्रति लोलुपता को दर्शाया है। नाटक में पुलिस का चरित्र राज्य की हिंसक शक्ति का प्रतिनिधि है। सिपाही अब आम आदमी (बकरी) की रक्षा नहीं करती, बल्कि सत्ता के सिपआदेश पर उसे दबाने का काम करती है। यहाँ पुलिस प्रतीक है राज्य की दमनकारी संरचना का, जो न्याय नहीं, बल्कि सत्ता के हितों को सुरक्षित करती है। बकरी पर पुलिस की पकड़ यह बताती है कि जनता के अधिकार और स्वतंत्रता अक्सर कानून के नाम पर ही कुचल दिए जाते हैं। पुलिस का भ्रष्टाचार इस तथ्य को उजागर करता है कि कानून और व्यवस्था का तंत्र अक्सर गरीब और कमजोर को ही अपराधी मान लेता है। इस प्रतीक के माध्यम से सक्सेना बताते हैं कि लोकतांत्रिक समाज में भी प्रशासन जनता का नहीं, बल्कि शासक वर्ग का औज़ार बन जाता है।

नाटक के नेता चरित्र राजनीति के अवसरवादी स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके लिए बकरी केवल वोट और सत्ता पाने का साधन है। वे उसके दुःख-दर्द को नहीं समझते, बल्कि उसे बहाना बनाकर अपनी महत्वाकांक्षाएँ पूरी करते हैं। सक्सेना ने यहाँ नेताओं की उस प्रवृत्ति पर कटाक्ष किया है जिसमें वे जनसमस्याओं का समाधान नहीं करते, बल्कि उन्हें भुनाकर सत्ता

की सीढ़ियाँ चढ़ते हैं। इन सभी प्रतीकों का समग्र अर्थ यह है कि बकरी का संघर्ष वास्तव में जनता और सत्ता के संघर्ष का प्रतीक है। इन सभी प्रतीकों के माध्यम से सक्सेना ने शोषण और सत्ता-संरचना की सच्चाई को उजागर किया है। नाटक हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि जब तक जनता मौन और निष्क्रिय है, तब तक वह 'बकरी' ही बनी रहेगी।

नाटक का सबसे तीखा व्यंग्य जनता की चुप्पी पर है। बकरी का बार-बार शिकार होना केवल सत्ता, पुलिस या धर्मगुरुओं की वजह से नहीं है, बल्कि जनता की निष्क्रियता और मौन सहमति भी इसका कारण है। सक्सेना यह स्पष्ट करते हैं कि अन्याय तभी कायम रहता है जब पीड़ित वर्ग आवाज़ नहीं उठाता। इस प्रकार जनता की चुप्पी स्वयं उसके शोषण का आधार बन जाती है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना व्यंग्य को केवल हँसाने के लिए प्रयोग नहीं करते, बल्कि उसके माध्यम से गहरी चोट करते हैं।

नाटक की भाषा सरल, व्यंग्यपूर्ण और संवादात्मक है। इसमें ग्रामीण बोलचाल की सहजता भी है और राजनीतिक-धार्मिक भाषा की पैरोडी भी। संवादों में चुटीला व्यंग्य है। उदाहरण के लिए, जब नेता बकरी को जनता की तरह संबोधित करता है, तो यह लोकतांत्रिक नारों का सीधा उपहास बन जाता है। भाषा का यही गुण दर्शकों और पाठकों को हँसाते हुए गहरे सोचने के लिए बाध्य करता है।

निष्कर्ष :

इससे स्पष्ट होता है कि 'बकरी' केवल व्यंग्य नहीं, बल्कि चेतना जगाने वाला नाटक है। भले ही 'बकरी' 1970 के दशक के राजनीतिक परिदृश्य में लिखा गया था, लेकिन इसकी प्रासंगिकता आज भी वैसी ही है। आज भी आम आदमी सत्ता और संस्थाओं के बीच पिस रहा है। लोकतंत्र की आड़ में अवसरवादी राजनीति का बोलबाला है। धर्म और राजनीति का गठजोड़ और मजबूत हुआ है। जनता आज भी असहाय और मौन है।

इस दृष्टि से यह नाटक केवल ऐतिहासिक नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए चेतावनी है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी' हिंदी नाट्य साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण कृति है। यह नाटक व्यंग्य, प्रतीक और रूपक के माध्यम से उस व्यवस्था को बेनकाब करता है जिसमें जनता हमेशा हाशिए पर रहती है। बकरी का अंत वस्तुतः इस बात का संकेत है कि यदि जनता अपनी अस्मिता और अधिकारों के लिए नहीं लड़ेगी, तो वह हमेशा सत्ता के हाथों बलि चढ़ती रहेगी। लोकतंत्र तभी सार्थक होगा, जब जनता अपनी भूमिका पहचानकर अन्याय के विरुद्ध खड़ी होगी। इस प्रकार 'बकरी' नाटक एक साधारण कथा के भीतर असाधारण संदेश छुपाए हुए है–"जनता जागरूक हो, अन्यथा हर युग में उसकी बलि चढ़ती रहेगी।"

संदर्भ सूची

1. सिंह, नामवर. हिंदी के व्यंग्य नाटक. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1985.
2. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल. बकरी. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 1979.
3. श्यामकुमार. हिंदी नाटक और व्यंग्य परंपरा. वाराणसी: ज्ञान भारती, 1992.
4. त्रिपाठी, रामजी. स्वतंत्रोत्तर हिंदी नाटक. नई दिल्ली: साहित्य भवन, 2001.
5. वर्मा, संजय. "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' और समकालीन प्रासंगिकता।" समकालीन साहित्य (2008): 55-63.

डॉ. हसन युनुस पठान,
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग,
सेंट जोसेफ विश्वविद्यालय, बेंगलुरु - 560 027,
Email: pathanhasan@sju.edu.in